गलत, यानी कितना गलत?

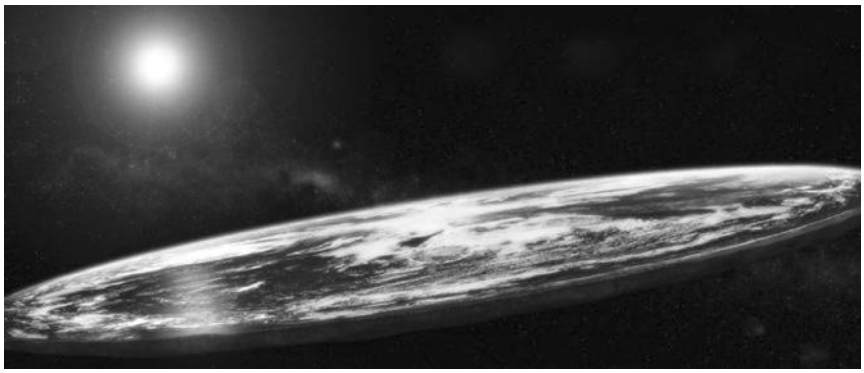

आइज़ेक एसीमोव

एक दिन मुझे एक खत मिला। घसीटमार हैंडराइटिंग में लिखे इस खत को पढ़ना काफी कठिन साबित हुआ। बहरहाल, मैंने इसे पढ़ने की भरसक कोशिश की, यह सोचकर कि शायद यह महत्वपूर्ण हो। पहले ही वाक्य में लेखक ने मुझे सूचित किया था कि वह अँग्रेज़ी साहित्य में स्नातक शिक्षा ले रहा है, मगर उसका ख्याल है कि वह मुझे थोड़ा विज्ञान सिखा सकता है (मैंने एक निश्वास छोड़ी क्योंकि मेरी जानकारी में अँग्रेज़ी साहित्य के बहुत ही कम छात्र थे जो मुझे विज्ञान सिखा सकते हैं। अलबत्ता, मैं अपने अज्ञान की विशालता से भी वाकिफ हूँ और किसी से भी सीखने को तैयार रहता हूँ। तो मैंने पढ़ना जारी रखा)।

समझ में यह आया कि अपने अनगिनत लेखों में से किसी एक में मैंने इस बात पर खुशी ज़ाहिर की थी कि मैं एक ऐसी सदी का बाशिन्दा हूँ जहाँ हमने अन्ततः इस ब्रह्माण्ड की बुनियाद को पकड़ लिया है।

अवधारणाओं का विकास

मैं मामले की गहराई में नहीं गया था मगर मेरा आशय यह था कि अब हमें इस ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाले बुनियादी नियम मालूम हैं और उसके मोटे-मोटे घटकों के बीच के गुरुत्वीय अन्तर्सम्बन्धों की जानकारी

है, जैसा कि 1905 से 1916 के बीच विकसित सापेक्षता सिद्धान्त में स्पष्ट हुआ है। हमें उप-परमाण्विक कणों और उनके बीच की अन्तर्क्रियाओं के नियम भी पता हैं - इनका निहायत साफ-सुथरा विवरण 1900 से 1930 के दरमियान विकसित क्वांटम सिद्धान्त में हुआ है। और तो और, हमने यह भी पता कर लिया है कि निहारिकाएँ और निहारिका पुंज भौतिक ब्रह्माण्ड की बुनियादी इकाइयाँ हैं, जैसा कि 1920 और 1930 के बीच खोजा गया था। आप देख ही सकते हैं कि ये सब बीसवीं सदी की खोजें हैं।

अँग्रेज़ी साहित्य के नौजवान विशेषज्ञ ने मेरा उद्धरण देने के बाद मुझे इस बाबत अच्छा खासा व्याख्यान दे डाला था कि हर सदी के लोगों ने माना है कि अन्ततः उन्होंने ब्रह्माण्ड को समझ लिया है और अगली ही सदी में वे गलत साबित हुए हैं। इसका मतलब है कि अपने आधुनिक 'ज्ञान' के बारे में हम एक ही बात पक्के तौर पर कह सकते हैं कि वह गलत है। इसके बाद नौजवान ने अनुमोदन के स्वर में सुकरात का उद्धरण प्रस्तुत किया था - जब सुकरात को पता चला था कि डेल्फी के किसी विद्वान ने उन्हें (सुकरात को) यूनान का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति घोषित किया था, तो सुकरात ने कहा था, "यदि मैं सबसे बुद्धिमान व्यक्ति हूँ, तो इसलिए कि मैं अकेला व्यक्ति हूँ जो यह जानता है कि मैं कुछ नहीं जानता।" नौजवान का आशय यह था कि मैं निपट मूर्ख हूँ क्योंकि मैं इस मुगालते में हूँ कि मैं बहुत कुछ जानता हूँ।

उस नौजवान को मेरा जवाब था, "जॉन, जब लोगों ने सोचा कि धरती चपटी है, तो वे गलत थे। जब लोगों ने सोचा कि धरती गोलाकार है तो वे गलत थे। मगर यदि तुम्हें ऐसा लगता है कि धरती को गोलाकार मानना उतना ही गलत है जितना उसे चपटी मानना, तो तुम्हारा विचार उन दोनों से ज़्यादा गलत है।"

देखा जाए तो बुनियादी दिक्कत यह है कि लोगों को लगता है कि 'सही' और 'गलत' निरपेक्ष बातें हैं; कि जो बात नितान्त और पूरी तरह सही नहीं है, वह पूरी तरह और बराबर मात्रा में गलत है।

अलबत्ता, मुझे लगता है कि ऐसा नहीं है। मेरा ख्याल है कि सही और गलत थोड़े धुँधले विचार हैं। इस आलेख में मैं यही समझाने का प्रयास करूँगा।

जब मेरा अँग्रेज़ी साहित्य विशेषज्ञ मित्र कहता है कि हर सदी में वैज्ञानिक सोचते हैं कि उन्होंने ब्रह्माण्ड का खाका खींच लिया है और वे हमेशा गलत होते हैं, तो मैं यह जानना चाहता हूँ कि वे कितने गलत थे। क्या वे हर बार उतनी ही हद तक गलत थे? एक उदाहरण लेते हैं।

सभ्यता के शुरुआती दिनों में आम एहसास यह था कि धरती चपटी है।

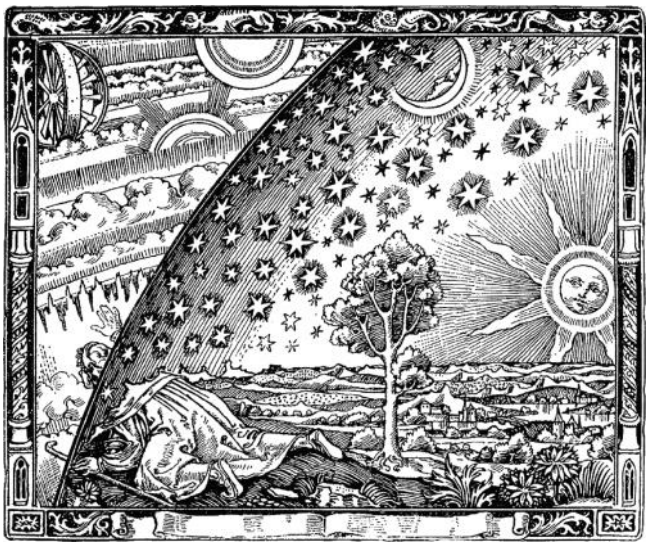

धरती चपटी होने की परिकल्पना के साथ यह भी विचार था कि आकाश एक खोखले अर्धगोले की तरह है जिस पर सूरज-चाँद-तारे जड़े हुए एक अक्ष के चारों ओर परिक्रमा कर रहे हैं। अर्धगोले को घूमाने वाला यंत्र क्षितिज के पार है। 16वीं सदी में बनाए गए इस चित्र में दिखाया गया है कि कोई इन्सान चपटी धरती के किनारे तक पहुँच कर आकाश से सिर बाहर निकालकर आकाश को घुमाने वाले यंत्र को निहार रहा है।

यह एहसास इसलिए नहीं बना था कि लोग बेवकूफ थे, न ही इसलिए बना था कि वे लोग बेहूदा बातों पर यकीन करने पर अड़े थे। उन्होंने उम्दा प्रमाणों के आधार पर ही माना था कि धरती चपटी है। बात सिर्फ इतने पर नहीं टिकी थी कि 'दिखती तो ऐसी ही है' क्योंकि धरती चपटी नहीं दिखती। पहाड़ों, वादियों, बीहड़ों, दर्रों वगैरह के चलते यह निहायत ऊबड़-खाबड़ नज़र आती है।

यह तो सही है कि सीमित क्षेत्रों में सपाट मैदान हैं और यहाँ धरती की सतह अपेक्षाकृत चपटी नज़र आती है। ऐसा ही एक मैदान दज़ला-फरात (टिग्रिस-यूफ्रेट्स) इलाके में है जहाँ पहली ऐतिहासिक सभ्यता (लिखाई समेत) पनपी थी। यह सभ्यता सुमेर की थी।

हो सकता है कि मैदानों के इस नज़ारे ने सुमेर के अक्लमन्द निवासियों को यह सामान्यीकरण मानने को विवश किया हो कि धरती चपटी है: अर्थात् यदि आप किसी तरह से सारे उभार और गड्ढों को समतल कर दें, तो आपको जो धरती मिलेगी वह चपटी

होगी। इस धारणा को इस बात से बल मिला होगा कि विशाल जलराशियाँ (तालाब और झीलें) शान्त दिनों में सपाट ही नज़र आती हैं।

इसी सवाल को एक अलग ढंग से भी पूछा जा सकता हैः पृथ्वी की सतह की गोलाई या वक्रता कितनी है? यदि काफी लम्बी दूरी को देखें, तो पृथ्वी की सतह पर्फेक्ट सपाटपन से (औसतन) कितनी विचलित होती है? चपटी-धरती का सिद्धान्त कहेगा कि धरती की सतह सपाटपन से लगभग बिलकुल भी विचलित नहीं होती; सतह की वक्रता शून्य प्रति मील है।

यह सही है कि आजकल हमें पढ़ाया जाता है कि चपटी-धरती का सिद्धान्त गलत है; पूरी तरह गलत है, भयानक रूप से गलत है, सर्वथा गलत है। मगर ऐसा नहीं है। धरती की वक्रता लगभग शून्य प्रति मील ही है। अर्थात्, हालाँकि, चपटी-धरती का सिद्धान्त गलत है मगर यह लगभग सही है। और इसीलिए यह सिद्धान्त इतने समय तक चलता रहा।

चपटी धरती - कुछ चुनौतियाँ

यकीनन, ऐसे कई कारण थे जिनके चलते चपटी-धरती का सिद्धान्त असन्तोषप्रद था। 300 ईसा पूर्व के आसपास यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने इन कारणों का सार प्रस्तुत किया था। पहला, जब आप उत्तर की ओर यात्रा करते हैं, तो कुछ तारे दक्षिण गोलार्ध की तरफ ओझल होते जाते हैं। और यदि आप दक्षिण की ओर बढ़ें तो तारे उत्तरी गोलार्ध की तरफ ओझल होते जाते हैं। दूसरा, चन्द्र ग्रहण के समय

समुद्री जहाज़ को आते या जाते हुए देखने, या चन्द्रग्रहण के दौरान दिखाई देने वाली पृथ्वी की छाया। कुछ ऐसे अवलोकन थे जिन्होंने धरती के चपटे आकार से आगे जाकर सोचने का कौतुहल जगाया।

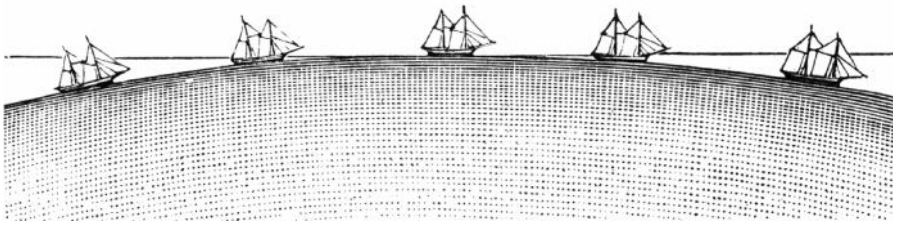

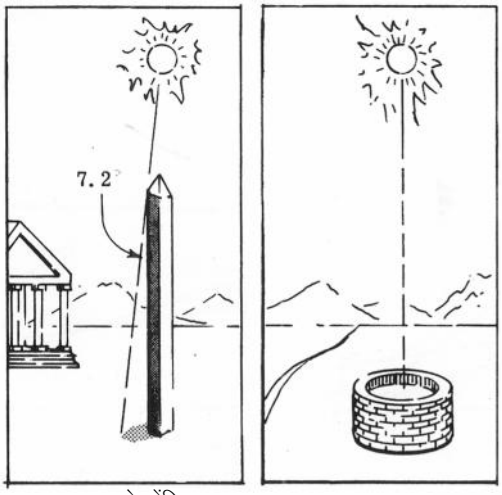

अलेक्ज़ेंड्रिया अस्वान

पृथ्वी के आकार की नपाई: 21 जून को अस्वान के एक कुएँ में और अलेक्ज़ेंड्रिया में खम्बे की ठीक दोपहर में बनने वाली छाया। अस्वान में कोई छाया नहीं और अलेक्ज़ेंड्रिया में छाया कोण बना रही है। वैसे तो सूर्य की किरणें दोनों जगह समान्तर होनी चाहिए लेकिन धरती की वक्रता की वजह से ऐसा हो रहा है।

नीचे के चित्र में एक गोल धरती पर इन दो स्थानों के बीच की दूरी धरती की परिधि का 50वाँ हिस्सा है, यह दिखाया जा रहा है।

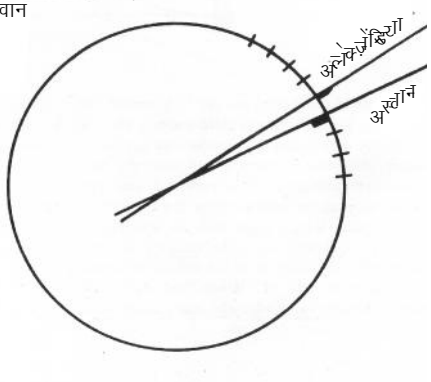

चाँद पर पृथ्वी की छाया हमेशा एक वृत्त के चाप के रूप में होती है। और तीसरा, पृथ्वी पर भी जहाज़ चाहे किसी भी दिशा में दूर जाएँ, क्षितिज में उनका निचला भाग सबसे पहले ओझल होता है।

यदि धरती की सतह चपटी है तो उपरोक्त तीनों में से किसी भी अवलोकन की ठीक-ठाक व्याख्या नहीं हो सकती मगर धरती को गोलाकार मान लिया जाए तो इन्हें समझा जा सकता है।

इसके अलावा, अरस्तू का विश्वास था कि सारे ठोस पिण्डों में एक साझा केन्द्र की ओर गति करने की प्रवृत्ति होती है। ज़ाहिर है, यदि कोई ठोस ऐसा करेगा तो वह गोलाकार हो जाएगा। किसी पदार्थ का एक निश्चित आयतन तब अपने केन्द्र के औसतन सबसे नज़दीक होता है जब वह गोलाकार हो, बनिस्बत किसी भी अन्य आकृति के।

अरस्तू के लगभग एक सदी बाद यूनानी दार्शनिक इरेटोस्थेनीज़ ने देखा कि अलग-अलग अक्षांशों पर सूर्य द्वारा बनाई गई छायाओं की लम्बाई अलग-अलग होती है (यदि धरती चपटी होती तो सारी छायाएँ एक बराबर लम्बाई की होतीं)। छाया की लम्बाई

में अन्तर के आधार पर इरेटोस्थेनीज़ ने धरती के गोले के डील-डौल की गणना की; पता चला कि पृथ्वी के गोले की परिधि 25,000 मील है।

इतने बड़े गोले की वक्रता लगभग 0.000126 प्रति मील होती है। यह आँकड़ा शून्य प्रति मील के बराबर ही है और प्राचीन काल में उपलब्ध तकनीकों की मदद से इसे नापना शायद ही सम्भव होता। 0.000126 और शून्य के बीच फर्क बहुत महीन है, उसी की वजह से चपटी धरती को गोल करने में इतना समय लगा था।

ध्यान देने की बात यह है कि शून्य और 0.000126 के बीच का नगण्य-सा अन्तर भी बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है। यह अन्तर बढ़ता जाता है। यदि इस अन्तर का ध्यान न रखा जाए, और पृथ्वी की सतह को चपटी की बजाय गोल न माना जाए, तो बड़ी दूरी के लिए पृथ्वी के नक्शे नहीं बनाए जा सकते। इसी प्रकार से यदि धरती को गोलाकार न माना जाए, तो समुद्र में अपनी स्थिति को जानने का कोई ठीक-ठाक तरीका न होगा और लम्बी समुद्री यात्राएँ असम्भव हो जाएँगी।

एक और बात यह है कि धरती को चपटी मानने में यह धारणा निहित है कि या तो वह अन्तहीन होगी या फिर उसकी सतह का कोई 'अन्तिम किनारा' होगा। मगर गोलाकार धरती की धारणा में धरती एक ऐसी चीज़ है जो अन्तहीन तो है, मगर साथ ही सीमित भी है। और बाद में हुई सारी खोजें सीमित धरती के साथ मेल खाती हैं।

तो, हालाँकि चपटी-धरती सिद्धान्त बहुत कम गलत है और इसके आविष्कारकों की तारीफ की जानी चाहिए, मगर साथ ही यह इतना गलत तो है ही कि गोलाकार धरती के हक में इसे खारिज किया जाए।

नाशपाती, नारंगी या गोला

अलबत्ता, क्या धरती एक गोला है? जी नहीं, धरती एक गोला नहीं है। कम-से-कम सही गणितीय मायने में तो नहीं है। गोले के कुछ गणितीय गुणधर्म होते हैं - मसलन, सारी त्रिज्याओं की लम्बाई बराबर होती है (त्रिज्या मतलब वे सारी रेखाएँ जो उसकी सतह के एक बिन्दु से शुरू होकर उसके केन्द्र से गुज़रते हुए सतह के किसी अन्य बिन्दु पर पहुँचती हैं)।

यह बात धरती पर लागू नहीं होती। धरती की विभिन्न त्रिज्याओं की लम्बाई अलग-अलग होती है।

लोगों को यह विचार कैसे आया कि धरती एक सच्चा गोला नहीं है? दूरबीन के शुरुआती दिनों में, मापन की सटीकता की सीमाओं के अन्दर, सूरज और चाँद की आउटलाइन पर्फेक्ट वृत्त नज़र आती थीं। यह अवलोकन इस धारणा से मेल खाता है कि चाँद और सूरज पर्फेक्ट गोलाकार हैं।

मगर जब दूरबीन से अवलोकन करने वाले पहले-पहले प्रेक्षकों ने बृहस्पति और शनि को देखा तो तुरन्त स्पष्ट हो गया कि उन ग्रहों की

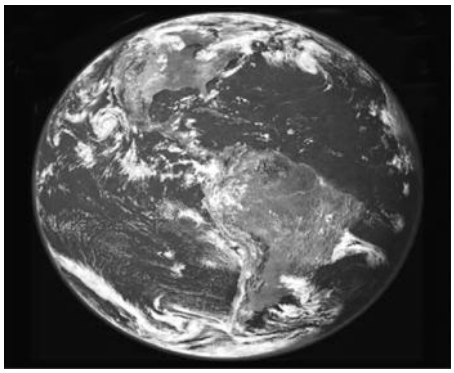

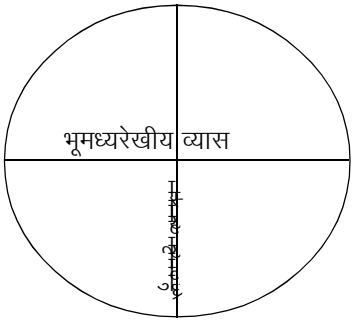

गणितीय आधार पर धरती कोई मुकम्मल गोला नहीं है। धरती का भूमध्यरेखीय व्यास 12755 कि.मी. है जबकि ध्रुवीय व्यास 12711 कि.मी. है, यानी दोनों व्यास में 44 कि.मी. का अन्तर है। यह फोटोग्राफ सेटेलाइट द्वारा पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र के अध्ययन के दौरान खींचा गया है।

आउटलाइन पर्फेक्ट वृत्त नहीं हैं। इसका मतलब हुआ कि बृहस्पति और शनि सच्चे गोले नहीं हैं।

सत्रहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में आइज़ेक न्यूटन ने दर्शाया कि कोई भी विशाल पिण्ड गुरुत्वाकर्षण बलों के प्रभाव से एक गोला बन जाएगा (ठीक यही बात अरस्तू ने भी कही थी) मगर तभी जब वह घूर्णन न कर रहा हो। यदि वह घूर्णन कर रहा है तो एक अभिकेन्द्री (centripetal) बल लगने लगेगा जो पिण्ड के पदार्थ को गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध बाहर की ओर उठाएगा। जैसे-जैसे आप भूमध्य (विषुवत्त) की ओर बढ़ेंगे, यह प्रभाव बढ़ता जाएगा। गोलाकार पिण्ड की घूर्णन गति बढ़ने पर भी यह प्रभाव बढ़ता है। और बृहस्पति तथा शनि सचमुच बहुत तेज़ गति से घूर्णन करते हैं।

बृहस्पति या शनि की तुलना में पृथ्वी बहुत धीमे घूर्णन करती है। लिहाज़ा, प्रभाव भी कम होगा मगर होगा ज़रूर। पृथ्वी की वक्रता का वास्तविक मापन अठारहवीं सदी में किया गया था और न्यूटन सही साबित हुए थे।

दूसरे शब्दों में, पृथ्वी में भूमध्यरेखीय उभार है। या कह सकते हैं कि पृथ्वी ध्रुवों पर थोड़ी दबी हुई है। यह गोलाकार न होकर एक पिचका हुआ गोला है (नारंगी समान)। इसका मतलब है कि पृथ्वी की विभिन्न त्रिज्याओं की लम्बाई में अन्तर है। सबसे बड़ी त्रिज्याएँ

वे हैं जो भूमध्य रेखा पर सतह के किसी बिन्दु से शुरू होकर भूमध्य रेखा के सम्मुख बिन्दु को जोड़ती हैं। यह 'भूमध्यरेखीय त्रिज्या' 12,755 कि.मी. लम्बी है। सबसे छोटी त्रिज्या उत्तरी ध्रुव को दक्षिणी ध्रुव से जोड़ती है। यह 'ध्रुवीय त्रिज्या' 12,711 कि.मी. लम्बी है।

सबसे लम्बी और सबसे छोटी त्रिज्या के बीच का अन्तर 44 कि.मी. है और इसका मतलब है कि पृथ्वी का नारंगीपन (यानी सच्चे गोले से भटकाव) 44/12755 या 0.0034 है। यह 1 प्रतिशत का एक-तिहाई है।

इसी बात को दूसरे ढंग से देखें, तो किसी सपाट सतह पर हर जगह वक्रता शून्य प्रति कि.मी. होती है। पृथ्वी की सतह पर वक्रता हर जगह 0.000126 प्रति मील (या 8 इंच प्रति मील) है। नारंगीनुमा पृथ्वी पर वक्रता का मान 7.973 इंच प्रति मील से लेकर 8.027 इंच प्रति मील के बीच बदलता है।

गोलाकार से दबे हुए गोलाकार तक पहुँचने के लिए जितने करेक्शन की ज़रूरत पड़ती है वह उस करेक्शन के मुकाबले बहुत कम है जो चपटी धरती से गोलाकार धरती की यात्रा में ज़रूरी था। अर्थात्, सही मायने में तो गोलाकार धरती की धारणा गलत है, मगर यह उतनी गलत नहीं है जितनी कि चपटी धरती की धारणा।

और थोड़ी सख्ती बरतें, तो कहना पड़ेगा कि नारंगीनुमा गोलाकार धरती की धारणा भी सही नहीं है। 1958 में उपग्रह वेनगार्ड-1 को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया गया था। यह उपग्रह पृथ्वी के स्थानीय गुरुत्वाकर्षण - और उसके आधार पर पृथ्वी की आकृति - का मापन अभूतपूर्व सटीकता से कर सकता था। पता यह चला कि भूमध्यरेखीय उभार भूमध्य रेखा के दक्षिण की ओर थोड़ा ज़्यादा है बनिस्बत उत्तर की ओर। साथ ही यह भी पता चला कि उत्तरी ध्रुव की समुद्र सतह के मुकाबले दक्षिणी ध्रुव की समुद्र सतह पृथ्वी के केन्द्र के थोड़ी ज़्यादा नज़दीक है।

इसको बयान करने का एकमात्र तरीका यही है कि पृथ्वी नाशपाती के आकार की है। और लोगों ने अविलम्ब यह निर्णय किया कि पृथ्वी गोलाकार न होकर अन्तरिक्ष में टँगी एक रसीली नाशपाती है। वास्तव में, नारंगीनुमा गोले से नाशपाती के बीच का अन्तर कि.मी. में नहीं मीटरों में है। इसकी वजह से वक्रता में जो फर्क पैदा होता है वह प्रति मील में इंच के दस लाखवें भाग के बराबर है।

मुख्तसर बात यह है कि मेरा अँग्रेज़ी साहित्य विशेषज्ञ मित्र सर्वथा सही और सर्वथा गलत की ख्याली दुनिया का वासी है जो शायद मानता है कि चूँकि सारे सिद्धान्त गलत हैं, इसलिए हो सकता है आज जिस पृथ्वी को गोलाकार माना जा रहा है, उसे अगली सदी में घनाकार, फिर उससे अगली सदी में एक खोखला चतुष्फलक और

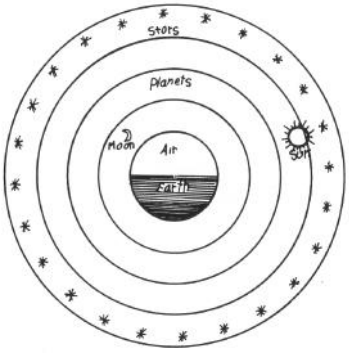

पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और ग्रह, उपग्रह, तारामण्डल इसकी परिक्रमा करते हैं। इस मान्यता से काफी समय तक आकाशीय पिण्डों की गतियों की व्याख्या होती रही। इस भूकेन्द्री मॉडल तक पहुँचने से पहले कई पड़ाव थे। ग्रीक खगोलविद ल्यूसिप्पिस (455 बी.सी.) का मत था कि चपटी धरती को घेरे हुए कई गोलाभ हैं। चाँद, सूरज और तारे अलग-अलग गोलाभों पर स्थित हैं।

आगे चलकर शायद डोनट के आकार का माना जाएगा।

दरअसल, होता यह है कि जब वैज्ञानिकों के हाथ कोई अच्छी अवधारणा लग जाती है तो वे इसे परिष्कृत करते जाते हैं और ज़्यादा बारीकी से लागू करते जाते हैं। यह काम मापन के उपकरणों में सुधार के साथ सम्भव होता है। सिद्धान्त गलत नहीं बल्कि अधूरे होते हैं।

भूकेन्द्री-सूर्यकेन्द्री मॉडल

यह बात पृथ्वी के आकार ही नहीं, कई अन्य मामलों में भी दर्शायी जा सकती है। जब ऐसा लगता है कि कोई नया सिद्धान्त क्रान्तिकारी है, तब भी वास्तव में, वह छोटे-छोटे परिष्कारों के ज़रिए ही उभरा होता है। यदि छोटे-छोटे परिष्कारों से ज़्यादा किसी चीज़ की ज़रूरत होती, तो पुराना सिद्धान्त ज़्यादा समय तक टिक ही नहीं पाता।

कॉपरनिकस ने एक भू-केन्द्रित सौर मण्डल को छोड़कर सूर्य-केन्द्रित सौर मण्डल को अपनाया था। ऐसा करते हुए वे एक प्रत्यक्ष दिखने वाली चीज़ को छोड़कर एक ऐसी चीज़ को अपना रहे थे जो हास्यास्पद नज़र आती थी। अलबत्ता, यह आकाश में ग्रहों की गति की गणनाओं को बेहतर बनाने का मामला था, और अन्ततः भू-केन्द्रित सिद्धान्त पीछे छूट गया। पुराना सिद्धान्त (यानी भूकेन्द्रित सिद्धान्त) इतने लम्बे समय तक टिका रहा तो इसलिए कि वह उस समय के मापन के मापदण्डों के तहत काफी बढ़िया नतीजे देता था।

एक और उदाहरण देखें। पृथ्वी की भौगोलिक संरचनाएँ इतनी धीमी रफ्तार से बदलती हैं और यहाँ रहने वाले जीव इतनी धीमी रफ्तार से विकसित होते हैं कि शुरुआत में यह मानना ठीक ही था कि कोई परिवर्तन नहीं होता है और पृथ्वी और जीवन हमेशा से वैसे ही रहे हैं, जैसे आज हैं। यदि यह सही है तो इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि पृथ्वी और जीवन अरबों वर्ष पुराने हैं या हज़ारों वर्ष पुराने हैं। हज़ारों को समझना कहीं ज़्यादा आसान

लगता था।

मगर जब सावधानीपूर्वक किए गए अवलोकनों ने दर्शाया कि पृथ्वी और जीवन बहुत धीमी रफ्तार से बदलते रहते हैं, तो यह स्पष्ट हो गया कि पृथ्वी और जीवन बहुत प्राचीन होने चाहिए। आधुनिक भूविज्ञान अस्तित्व में आया और साथ ही जैविक विकास की धारणा भी।

यदि बदलाव की रफ्तार ज़्यादा तेज़ होती तो भूविज्ञान और जैव-विकास की धारणा प्राचीन काल में ही अपने आधुनिक स्वरूप तक पहुँच चुकी होती। सृष्टिवादी आज भी यदि अपनी कपोल-कल्पनाओं का ढिंढोरा पीटते रह सकते हैं, तो सिर्फ इसलिए कि एक अचर विश्व में बदलाव की रफ्तार और एक विकासोन्मुख विश्व में बदलाव की रफ्तार के बीच जो अन्तर है वह शून्य और लगभग शून्य के बीच है।

चूँकि, सिद्धान्तों में परिष्कार का परिमाण कम-से-कम होता जाता है, इसलिए अति-प्राचीन सिद्धान्त भी इतने सही तो रहे ही होंगे कि उनमें प्रगति की गुंजाइश थीः यह प्रगति ऐसी है कि हर नया परिष्कार अपने से पहले किए गए परिष्कार का सफाया नहीं करता।

मसलन, यूनानियों ने पृथ्वी की गोलाई पर ध्यान दिए बगैर ही अक्षांश और देशांश की धारणा प्रस्तुत की थी और भूमध्य सागर क्षेत्र के ठीक-ठाक नक्शे बनाए थे, हम आज भी अक्षांश और देशांश का इस्तेमाल करते हैं।

सुमेरवासियों ने शायद सबसे पहले यह सिद्धान्त स्थापित किया था कि आकाश में ग्रहों की गतियों में नियमितता होती है और इनका पूर्वानुमान किया जा सकता है। वे पूर्वानुमान के तरीके भी विकसित कर पाए थे, हालाँकि, वे मानते थे कि पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड के केन्द्र में है। उनके मापों में बहुत सुधार हुए हैं मगर सिद्धान्त वही है।

ज़ाहिर है, हमारे पास जो सिद्धान्त हैं उन्हें मेरे अँग्रेज़ी साहित्यकार मित्र के सरलीकृत अर्थ में गलत माना जा सकता है, मगर कहीं अधिक सटीक व परिष्कृत मायने में उन्हें सिर्फ अधूरा माना जाना चाहिए।

आइज़ेक एसीमोव: बीसवीं शताब्दी में विज्ञान को लोगों तक पहुँचाने में जिन वैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है - उनमें से एक हैं आइज़ेक एसीमोव। विज्ञान गल्प को भी वे नई ऊँचाइयों तक लेकर गए। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखीं हैं, जिनकी कुल संख्या सैकड़ों में होगी।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।